समय के आदि से अन्त तक

१ जुलाई, २०१८

आत्मीय पाठकगण,

शुभ गुरुपूर्णिमा माह!

क्या आपने कभी पल भर रुककर विचार किया है कि यह कितनी अद्‌भुत बात है कि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है? ऐसी कोई चीज़ दिखाई नहीं देती जो चन्द्रमा को पृथ्वी से जोड़ती हो; इन दोनों को जोड़ने वाला न तो कोई धागा दिखाई देता है, न कोई रस्सी और न ही कोई तार दिखता है। फिर भी, प्रकृति, ब्रह्माण्ड के नियम, गुरुत्वाकर्षण की शक्ति — ये सब इस बात को स्पष्टतः दर्शाते हैं कि कोई जुड़ाव, कोई सम्बन्ध *अवश्य है,* जो अदृश्य है पर बलशाली है। और इस जुड़ाव का, इस सम्बन्ध का प्रभाव प्रचण्ड होता है। चन्द्रमा की कलाओं के अनुसार सागर में लहरें उठती हैं और फिर शान्त हो जाती हैं।

इस उदाहरण में जो बात बहुत दिलचस्प है, और बोधप्रद भी, वह यह है कि भले ही कोई बड़ी भारी उद्‌घोषणा नहीं की गई है जो चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच के सम्बन्ध के विषय में बताती हो, और लहरों के उतार-चढ़ाव के अलावा, उनके बीच मौजूद इस सम्बन्ध के बारे में कोई संकेत भी नहीं है, फिर भी चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच सम्बन्ध सदैव रहता ही है। इन दोनों के बीच की वह निरन्तर गतिशीलता, वह आदान-प्रदान, उनके बीच की वह आपसी स्वीकृति व दोनों का एक-दूसरे पर प्रभाव डालना — यह सब सदैव होता रहता है, चाहे इस ग्रह के जीवों को इसका बोध हो या न हो। इन दोनों आकाशीय पिण्डों — पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच एक आपसी समझ है, प्रकृति के विधि-विधान के प्रति एक अनोखी सहमति है।

हाँ, मनुष्य होने के नाते हमारी अपनी गहरी, तीव्र और मूलभूत ज़रूरत है कि हम कोई जुड़ाव, कोई सम्बन्ध चाहते हैं। हमारी प्रवृत्ति ही है, उस जुड़ाव को, उस सम्बन्ध को खोजना और उस 'विशेष' सम्बन्ध में अपने आपको स्थापित करना जो हमारे लिए सबसे खरा और अन्तर्जात सम्बन्ध है। शायद यह गुरुत्वाकर्षण का बल नहीं है जो इस जुड़ाव को पाने की दिशा में बढ़ने के लिए हमें सतत प्रेरित कर रहा है, फिर भी कोई अत्यन्त प्रबल शक्ति है ज़रूर। और मेरा यह मानना है कि हमें बाध्य करने

वाली यह शक्ति, हमारी बाह्य परिस्थितियों को नियन्त्रित करने वाली शक्तियों से अधिक प्रबल, अधिक सामर्थ्यशाली है। प्रश्न यह है : क्या हम अपने हृदय के इस आदेश की ओर, इस निर्देश की ओर ध्यान देंगे?

मैं आपको एक प्रसंग सुनाती हूँ। इस ग्रीष्म के आरम्भ में, एक दिन, श्रीगुरुमाई अनुग्रह बिल्डिंग की नीचे वाली लॉबी में खड़ी थीं। उनके साथ एक स्लेटी रंग का अफ़्रीकी तोता भी था। इस तोते को सन् १९९१ में गुरुमाई जी के पास पहली बार लाया गया था। तब वह केवल पाँच महीने का था और उसके पंख भी नहीं निकले थे। वह कई वर्षों तक श्री मुक्तानन्द आश्रम में रहा और अब वह फ़्लोरिड़ा में अपने रखवाले के पास रहता है व साल में एक बार आश्रम आता है।

तो उस दिन, वह तोता आश्रम आया था। गुरुमाई जी नीचे वाली लॉबी में उसके साथ थीं और उसे तरह-तरह की ऐसी सुन्दर आवाज़ें निकालते हुए सुन रही थीं जो केवल अफ़्रीकी तोते ही निकाल सकते हैं — ज़िन्दादिल सीटियाँ और उतार-चढ़ाव भरी कूक। थोड़ी-थोड़ी देर में, कुछ सेवाकर्ता लॉबी में आते और गुरुमाई जी को प्रणाम करते तथा उस तोते को निहारते। यह परस्पर आदान-प्रदान बहुत मधुरता व सहजता से हो रहा था।

कुछ देर बाद, गुरुमाई जी ने ऊपर वाली लॉबी की ओर जाने वाली सीढ़ियों की तरफ़ देखा। एक विज़िटिंग सेवाकर्ता उन सीढ़ियों से इसी दिशा में आ रही थीं। गुरुमाई जी को वे कुछ समय से दिखी नहीं थीं। अतः यह बिलकुल सही समय था क्योंकि अब उन सेवाकर्ता के पास अवसर था कि वे आकर गुरुमाई जी के दर्शन करें, और हाँ, उस पक्षी को भी देख लें। गुरुमाई जी उन सेवाकर्ता को *पुकारने ही वाली थीं* कि अचानक वे तेज़ी-से सीढ़ियों से उतरकर, दरवाज़े की तरफ़ बढ़ीं और एक बार भी मुड़कर देखे बिना ही बाहर निकल गईं।

बाद में इस घटना को लेकर गुरुमाई जी ने मुझसे कहा, "यह जो हुआ उसमें 'ठहरने और जुड़ने,' का अनुसरण नहीं किया गया। ठहरने और जुड़ने का अवसर हमेशा ही मौजूद होता है।"

यह सिखावनी, "ठहरो और जुड़ जाओ," गुरुमाई जी के इस वर्ष के सन्देश-प्रवचन से है और वर्ष २०१८ में जिस संकल्प पर कार्य करने के लिए गुरुमाई जी ने हमसे कहा है, उसी का एक अंग है। "ठहरना और जुड़ना" — हम इसी तरह किसी भी स्थान पर और किसी भी समय अपने खुद के सत्संग की रचना करते हैं। हम "ठहरते हैं," यानी अपने मन की चख-चख से दूर जाने के लिए हम ठहरते हैं, अपने दिमाग़ में लगातार जिन कहानियों की रट लगाए रखना हमें पसन्द है, उनसे दूर जाने के लिए हम कुछ क्षण रुकते हैं, जो मनोभाव हमारे अन्दर खलबली मचाते हैं और हम पर ज़रूरत से ज़्यादा हावी हो जाते

हैं, उनसे दूर जाने के लिए हम कुछ क्षण ठहरते हैं; और हम वर्तमान में बने रहने का प्रयत्न करते हैं। हम "जुड़ते हैं," अर्थात् हम उससे जुड़ जाते हैं, उससे एकलय हो जाते हैं जो हमारे सामने है और जो हमारे अन्दर है, यानी कृपारस का वह अनन्त कुण्ड जो हमारी ओर बहने के लिए बिलकुल तैयार ही है।

"ठहरो और जुड़ जाओ" — कितनी सटीक सिखावनी है, गुरुपूर्णिमा के इस माह में अभ्यास करने और इस पर आगे मनन करने के लिए! वह जुड़ाव, वह सम्बन्ध — यही वह प्रेरकशक्ति है जिससे इस पर्व का जन्म हुआ; गुरु व शिष्य के बीच का सम्बन्ध, एक साधक और उनके बीच का सम्बन्ध जो ज्ञान के मूर्तरूप हैं तथा जो परम सत्य का ज्ञान प्रदान करते हैं। इस सम्बन्ध के प्रति कृतज्ञतावश ही महर्षि वेदव्यास के शिष्य अपने श्रीगुरु का सम्मान व पूजन-वन्दन करना चाहते थे। और इसीलिए, आषाढ़ माह की पूर्णिमा इस उद्देश्य के लिए समर्पित की जाने लगी; इस माह की पूर्णिमा का चन्द्र वर्ष का सबसे पूर्ण और सर्वाधिक देदीप्यमान चन्द्र होता है। [आप वेबसाइट पर गुरुपूर्णिमा की पूरी कहानी अवश्य पढ़ें।]

मैं आपको प्रोत्साहित करती हूँ कि गुरुपूर्णिमा पर और उसके पहले के दिनों व सप्ताहों के दौरान, इसकी खोज करें कि आपके व श्रीगुरु के बीच के सम्बन्ध का स्वरूप क्या है। जब आप यह खोज करें तो समझें कि इस प्रकार का अन्वेषण करने के लिए उसमें सतत लगे रहना आवश्यक है। आप केवल एक ही बार ठहरकर जुड़ने का अभ्यास नहीं करते। आप ठहरने का अभ्यास *बार-बार* करते हैं, आप जुड़ने का अभ्यास *बार-बार* करते हैं, आप अपने हृदय में प्रवेश करते हैं और उसमें गहरे से गहरे उतरते जाते हैं, क्योंकि जिस सम्बन्ध की बात हम कर रहे हैं वह कोई निष्क्रिय या गतिहीन सम्बन्ध नहीं है, अपितु वह एक अत्यन्त जीवन्त, प्रवाहशील व स्पन्दनशील सम्बन्ध है, यह विविध रूप लेता रहता है और इसमें अनेक सूक्ष्मताएँ निहित हैं। यह सम्बन्ध अपने आपमें एक परिपूर्ण लोक है।

और यह लोक, ऐसा है जैसे ब्रह्माण्ड का वह विस्तार जो चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच विद्यमान है! इसमें "मेरा" या "तुम्हारा" नहीं है। इसमें एक-दूसरे का हो जाना है, पर किसीका भी किसी पर स्वामित्व नहीं है; इसमें प्रेम है पर उस प्रेम में कोई हेतु या स्वार्थ नहीं है। हाँ, इसमें कर्तव्य है; हाँ, निश्चित ही इसमें अनुशासन है, पर ये बलपूर्वक लादे हुए दायित्व नहीं महसूस होते। एक-दूसरे से जुड़े होने के इस लोक में 'देना' ऐसा मुक्तहस्त प्रतीत होता है जैसे सागर की उछलती हुई ऊँची लहरें अनन्त प्रचुरता के कारण उमड़ पड़ी हों। और, इस लोक में 'पाना' भी उतने ही सहज-स्वाभाविक रूप में होता है — जैसे सागर पीछे हटती हुई लहरों को सौम्यता से अपने में समा लेता है और किनारे के लिए जगह बना देता है।

***

इस वर्ष २७ जुलाई को गुरुपूर्णिमा का चन्द्र अपनी पूर्ण कला को प्राप्त होगा। उसी दिन अगला पूर्ण चन्द्र-ग्रहण भी होगा। यह २१वीं शताब्दी का सबसे लम्बा चन्द्र-ग्रहण होगा जिसकी अवधि १ घण्टा और ४३ मिनट होगी; यह भारत व पूरे एशिया में तथा मध्य पूर्वी देशों, अफ़्रीका, यूरोप व दक्षिण अमरीका में दिखाई देगा।

यह अवसर घटनाओं का एक अद्‌भुत संगम है, ग्रहण और गुरुपूर्णिमा। इसकी एक अद्‌भुत बात तो यह है कि यह समय निश्चित ही अत्यन्त शुभ होगा, ऐसा समय जो आध्यात्मिक साधना के लिए उपयुक्त है। और मेरे विचार में दूसरी अद्‌भुत बात यह है कि इस खगोलीय घटना से एक प्रतीकात्मक अर्थ निकाला जा सकता है, साथ ही इस विचार से भी एक सांकेतिक अर्थ निकाला जा सकता है कि भले ही हम अपनी बहिर्मुखी इन्द्रियों से चन्द्रमा को हमेशा नहीं देख पाते, फिर भी वह मौजूद है, वह अपने पूरे वैभव सहित *वहीं होता है* ।

ऐसे कई तरीक़े हैं जिनके द्वारा इस पावन दिन व माह से अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सकता है, गुरुपूर्णिमा के पर्व को उत्कृष्ट रीति से मनाया जा सकता है। हम निश्चित ही ‘ठहरने व जुड़ने’ का अभ्यास कर सकते हैं, और हम ऐसा पुनः कर सकते हैं, तथा बार-बार यह अभ्यास कर सकते हैं। साथ ही — हम दक्षिणा अर्पित कर सकते हैं। प्राचीन काल से ही, गुरुपूर्णिमा पर दक्षिणा अर्पित करने की परम्परा है, और यह परम्परा आज भी जारी है।

हमारे पास दक्षिणा का अभ्यास करने का सुअवसर है, यही अपने आप में श्रीगुरु की करुणा के विषय में कितना कुछ कह देता है, क्योंकि अगर आप इस पर विचार करें तो पाएँगे कि सद्‌गुरु के प्रति कृतज्ञता को नापना या उसका परिमाण निर्धारित करना वास्तव में असम्भव है। हमें निरन्तर जितना प्राप्त होता है उसके बदले में, उतनी ही मात्रा में वापस देना तो दूर, उसे वापस देने के आसपास पहुँचना भी हमारे लिए असम्भव है। फिर भी, दक्षिणा अर्पित करने के रूप में हमारे पास वह क्षमता है कि हम *कुछ* कर सकें। अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए दक्षिणा के रूप में हमारे पास एक ठोस मार्ग है।

और जब आप दक्षिणा अर्पित करते हैं, जब आप अपने आपको श्रीगुरु के चरणकमलों में अर्पित करते हैं, तो निश्चित ही एक कीमियागरी घटित होती है। हो सकता है कि शुरू में आपको यह महसूस भी न हो। किन्तु, समय के साथ, जैसे-जैसे आप अर्पित करते जाते हैं, जैसे-जैसे आप ‘देने’ के अपने भाव का, ‘देने’ की अपनी शक्ति का विकास करते जाते हैं तो आपको अवश्य ही दिखाई देने लगता है कि सचमुच कुछ घटित हो रहा है; आप इसे स्पष्टता से महसूस करने लगते हैं। आप इस अभ्यास की शक्ति

में उतरकर उसके स्पन्दन के साथ एक हो जाते हैं। यह 'देने' व 'पाने' का एक चक्र है। यह एक जीवन्त, सक्रिय सम्बन्ध है, यह ब्रह्माण्ड में चलता रहने वाला आदान-प्रदान है जो आपके अपने हृदय में घटित होता है।

मैं आपको प्रोत्साहित करती हूँ कि आप स्वामी ईश्वरानन्द द्वारा लिखित सुन्दर आमन्त्रण पढ़ें जिसमें वे हमें गुरुपूर्णिमा के उपलक्ष्य में दक्षिणा अर्पित करने के लिए आमन्त्रित करते हैं, और आप यहीं, सिद्धयोग पथ की वेबसाइट द्वारा दक्षिणा अर्पित कर सकते हैं।

जुलाई के पूरे माह के दौरान वेबसाइट पर अन्य तरीक़े भी उपलब्ध होंगे जिनकी सहायता से आप गुरुपूर्णिमा मना सकते हैं। उदाहरणार्थ, वेबसाइट पर, गुरु-शिष्य सम्बन्ध के विषय पर प्रकाश डालने वाला एक लेख होगा। गुरुपूर्णिमा सम्बन्धी कहानियाँ होंगी : अमीर ख़ुसरो व उनके गुरु, हज़रत निज़ामुद्दीन की पारम्परिक कहानी और छान्दोग्य उपनिषद् से सत्यकाम जाबाल की कथा। गुरुपूर्णिमा के दिन आपके पास, एक सिद्धयोग विद्यार्थी द्वारा दी गई वार्ता को पढ़ने का अवसर होगा, तथा वीडिओ के माध्यम से श्री मुक्तानन्द आश्रम के आकाश में उदित पूर्णचन्द्र का दर्शन-लाभ भी होगा। इस सबके अतिरिक्त, आपके पास एक विशेष सुअवसर होगा, उस सद्‌गुण का अधिक गहराई से अन्वेषण करने का जो श्रीगुरुमाई ने अपने जन्मदिन पर हमें प्रदान किया — इसके लिए आप वेबसाइट पर 'कर्मण्यता' पर व्याख्या पढ़ सकते हैं।

भारत स्थित वाराणसी में पन्द्रहवीं शताब्दी में हुए महान सन्त-कवि कबीर जी अपने एक भजन में लिखते हैं :

> मोही तोही आदि अन्त बन आई
> अब कैसे लगन दुराई॥
>
> समय के आदि से अन्त तक, तुम्हारे और मेरे बीच एक सम्बन्ध है।
> इस प्रेम में अब कोई दूरी कैसे हो सकती है, यह प्रेम कैसे टूट सकता है?[१]

कितने गहन शब्द हैं ये, गुरुपूर्णिमा के माह के दौरान अपने हृदय में धारण करने के लिए! सम्बन्ध से, जुड़ाव से आख़िर हमारा क्या तात्पर्य है? वह कौन-सा अनुभव है जिसके साथ हम जुड़ते हैं, वह कौन-सी शक्ति है जो श्रीगुरु व हमारे बीच के सम्बन्ध में बहती है और इस सम्बन्ध को अटूट बनाती है? कबीर साहिब कहते हैं कि यह 'लगन' है, यह 'प्रेम' है। यही वह प्रेम है जो हमारे अन्तरंग की गहराइयों में सौम्यता से उमड़ता रहता है, वैसे ही जैसे सागर की गहराइयों में जल की धाराएँ सौम्यता

से तरंगित होती रहती हैं। यह प्रेम ललक से अलंकृत है, और यह उन पलों में विशेषरूप से अनुभव होता है जब हमारा हृदय इस ललकभरे प्रेम से आकण्ठ भरा होता है; तब ऐसा लगता है मानो हृदय के पास प्रेमवश उच्छलित होने के अलावा और कोई रास्ता ही नहीं है, क्योंकि अपने अन्दर कहीं हमें यह पता है : एक विशाल हृदय है जिसका हम भाग हैं; और यह विशाल हृदय उस असीम विस्तार की तरह है जिसमें से चन्द्रमा और तारे निकलकर अनन्तता में बिखर जाते हैं।

आदर सहित,

ईशा सरदेसाई

---

[१] अंग्रेज़ी भाषान्तर ©२०१८ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन।

©२०१८ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।